योग का पारम्परिक एवं आधुनिक स्वरूप

–प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय

.

परम्परागत योग का स्वरूप

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के युजिर् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है–सम्मिलित होना या एक होना। इस एकीकरण का अर्थ जीवात्मा तथा परमात्मा (शुद्ध आत्मा) का एकीकरण अथवा मनुष्य के व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक पक्षों के एकीकरण से लिया जा सकता है। साथ ही मनुष्य का उसके पर्यावरण के साथ समन्वय भी योग है।

"ज्ञानं शास्त्रोक्तपदार्थानां परिज्ञानं, विज्ञानं तु शास्त्रतो ज्ञातानं तथैव स्वाभानुभवकरणम्"

शंकराचार्य के अनुसार ज्ञान का तात्पर्य है–शास्त्रों या आचार्यों से आत्मादि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना और विज्ञान का अर्थ है–उस ज्ञात पदार्थ का उसी रूप में स्वयं अनुभव करना।[1]

योग वह साधना है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी आत्मा का विकास कर अपने जीवन में दिव्यता अथवा पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। योग अमृत है जिसके द्वारा मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर पाता है। योग वह विद्या जिससे जीव का रूपान्तरण ब्रह्म के रूप में किया जा सकता है। योग ब्रह्मविद्या है। "विज्ञान सहितमनुभवयुक्तम्"–शंकराचार्य की भाषा में अनुभव युक्त ज्ञान ही विज्ञान सहित ज्ञान है और वही योग है।[2] योग–विज्ञान मनुष्य की चेतना के विकास का विज्ञान है। यह एक विशिष्ट प्रकार का विज्ञान है जो पदार्थ, जीव तथा चेतना को एक साथ लेकर चलता है तथा विज्ञान और अध्यात्म की खाई पर बांध का कार्य करता है। **"ज्ञानं विज्ञानसहितं मज्ज्ञात्वा मोक्ष्यमेऽशुभात्**–भारतीय परम्परा का लक्ष्य मात्र ज्ञान प्राप्ति नहीं, अपितु विज्ञान प्राप्ति है। गीता में विज्ञान सहित गुह्यतम ज्ञान को मोक्ष का साधन बतलाया गया है।[3] योग का शाब्दिक अर्थ है–जुड़ना, आत्मा और परमात्मा का एकीकरण या सीमित का असीमित से मिलना। योग बीज के अनुसार प्राण तथा अपान या स्व के रज और रेतस् या सूर्य तथा चंद्रमा या जीवात्मा और परमात्मा आदि विरूद्ध युग्मों के एकीकरण को योग कहते हैं। योग मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास का क्रम है। योग का लक्ष्य शरीर को मानसिक शांति प्राप्ति हेतु तैयार करना है, जो कि परब्रह्म प्राप्ति के लिए आवश्यक है। योग एक जीवन दर्शन है। शरीर एवं मन के आपस में समरस होने की प्रक्रिया ही योग है।

"अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्"—शास्त्रों में तत्वानुभूति की प्राप्ति के लिए श्रवण, मनन और निध्यासन के क्रम में आत्मदर्शन, आत्मसाक्षात्कार या आत्मानुभूति करने का उपदेश दिया गया है और योग के द्वारा आत्मदर्शन को परम धर्म माना है।[4] उपनिषदों की परम्परा के अनुसार योग वह उच्च अवस्था है, जिसमें पांचों ज्ञानेन्द्रियों तथा मन की वृत्तियां रूक जाती है और बुद्धि भी स्थिर हो जाती है। इस प्रकार इन्द्रिय नियंत्रण से ध्यान स्थिर हो जाता है। पतंजलि के योगसूत्र के अनुसार योग चितवृत्ति—निरोध की अवस्था है। **"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"** चित्त की वृत्तियों को रोकना योग है।[5] भगवद्गीता के अनुसार योग दुःख या वेदनाओं से मुक्ति की अवस्था है। योगाभ्यास द्वारा मन स्थिर हो जाता है, जिससे वह अपने आप का निरीक्षण करता है और स्वयं में ही प्रसन्न होता है। **"युजिर योगे"**—व्याकरण की दृष्टि से संयोग या मेल अर्थ में योग शब्द की निष्पति रूधादिगणि उभयपदी अनिट् योगार्थक धातु युजिर से होती है।[6] योग ऐसी कीमिया है जो जीवन की वीणा के तार को सुव्यवस्थित, संतुलित एवं सुनियोजित तथा अंतःचेतना को झंकृत कर परमात्मा को मुग्ध करने वाला संगीत निकालती है, जिसमें शरीर का एक—एक अणु दिव्य आनन्द व स्वास्थ्य से भर जाता है।[7] **"नास्ति योगसमं वलम्"**—वेदान्त परम्परा में योग को स्वानुभूति का प्रमुख साधन माना है।[8] योगदर्शन में कहा गया—**"मन एवं मनुष्याणाम कारण बंधन मोक्षयो"**—अर्थात् मन को ही मानव के बंधन और मुक्ति का कारण बताया गया है। महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में मनोविज्ञान के वास्तविक कारणों के रूप में पांच क्लेशों—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश को बताया गया है। योग पद्धति मनोपचार के विषय में अत्यांतिक दृष्टि से विचार करती है, इसकी मान्यता के अनुसार मानसिक रूग्णता का मूल कारण चित्त वृत्तियों का बाह्य वस्तुओं में आसक्ति, उलझाव एवं बिखराव है। **"योगोऽप्राप्तस्य प्रापणम्"**—योग शब्द का प्रयोग अलभ्य लाभ या अप्राप्त की प्राप्ति के अर्थ में किया जाता है।[9]

प्रसिद्ध जैनाचार्य तुलसी ने अपने ग्रन्थ "मनोनुशासनम" में कहा **"एकाग्रचिंता योग निरोधोवा, ध्यानम्"।**[10] एकाग्रचित होकर योग निरोध करने को ध्यान कहते हैं। यहां योग का अर्थ मन, वचन, काया की प्रवृत्तियों से है। योग जीवन के रूपान्तरण की एक विशिष्ट कला एवं विज्ञान है। योग मन व व्यक्तित्व के उपचार की एक सर्वांगीण प्रणाली है। योग मन की बहिर्मुखी शक्तियों समेट कर अंतर्मुखी करने की चेष्टा करता है। योग के द्वारा दुष्प्रवृतियो क्रोध, अहंकार, माया, लोभ का क्षमा, विनय, सरलता व संतोष में रूपान्तरण होता है। योग मानव के भीतरी जगत का आईना है जिसमें उसके भाव और विचार स्पष्ट दिखाई देते हैं। योग व्यक्ति में पुरूषार्थ जगाता है कि जो बुराइयाँ भीतर में जमा हैं उसके स्थान पर अच्छाइयों को खड़ा कर दिया जाय। योग एक आध्यात्मिक पद्धति है जो चित्त एवं मन की शुद्धि करती है। योग से विक्षिप्त मन अनुशासित होता है तथा चंचल मन शांत होता है। जैसे

हाथी को अंकुश के द्वारा, घोड़े को लगााम के द्वारा नियंत्रित किया जाता है उसी प्रकार योग के द्वारा चंचल मन पर लगाम लगाई जाती है। मन की चंचलता के बारे में कहा गया है–

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन के मते न चालिए, पलक पलक मन और।।

प्रचलित योग पद्धतियां

भारतीय योग परम्परा में प्रमुख रूप से तीन धाराएं–वैदिक, बौद्ध और जैन मानी गई है। इनके निम्न ग्रन्थों में योग की चर्चा की गई है–

(1) वैदिक योग ग्रन्थ–वेद, उपनिषद्, गीता एवं पुराण

(2) बौद्ध योग ग्रन्थ–विशुद्धिमग्ग और मिलिन्द प्रश्न

(3) जैन योग ग्रन्थ–ध्यान शतक, मोक्ष पाहुड़, समाधि तंत्र, तत्वार्थ सूत्र, इष्टोपदेश, योग बिन्दु, योग सार, योग शतक एवं ज्ञान सार

योग के आधार भूत ग्रन्थ निम्न समय से प्रचलित हैं–

(1) प्राचीन उपनिषद्–600 वर्ष ईसा–पूर्व

(2) श्रीमद्भगवद्गीता–500 वर्ष ईसा–पूर्व

(3) पातंजल योग दर्शन–300 वर्ष ईसा–पूर्व

(4) जैन, हिन्दू, बौद्ध, सूफी तथा सिक्ख धर्म में योग–ईसा पूर्व 200 वर्ष से 1800 वर्ष ईसा के बाद।

(क) जैन योग

जैन धर्म की साधना पद्धति का नाम मुक्ति मार्ग है। इसके तीन अंग हैं–

सम्यक् दर्शन

सम्यक् ज्ञान

सम्यक् चारित्र

महर्षि पतंजलि के योग की तुलना में इस **''रत्नत्रयी''** को जैन योग कहा जा सकता है। जैन योग के दो मुख्य सूत्र है–संवर और तप। संवर पांच हैं–सम्यकत्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय और अयोग। साधना की ये ही पांच भूमिकाएँ हैं। गुणस्थान इसी का विकसित रूप है। ध्यान तपोयोग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। साधना का आदि, मध्य और अंत इसके द्वारा

ही सम्पन्न होता है। धर्मध्यान को प्रेक्षाध्यान के रूप में एक नया आयाम दिया गया है, जो जैन साधना पद्धति के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है।[11]

(i) प्रेक्षाध्यान :

प्रेक्षा का अर्थ है–गहराई में उतर कर देखना। जानना और देखना चेतना का लक्षण है। आवृत चेतना में जानने और देखने की क्षमता क्षीण हो जाती है। उस क्षमता को विकसित करने का सूत्र है–जानो और देखो। आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो, स्थूल मन के द्वारा सूक्ष्म मन को देखो, स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखो। देखना आत्मा का मूल तत्व है, इसलिए इस ध्यान पद्धति का नाम प्रेक्षाध्यान है। इसके कुल आठ चरण हैं।

(1) कायोत्सर्ग–इस विधि में काया का उत्सर्ग किया जाता है। काया होते हुए भी शिथिलीकरण के द्वारा उसका भान भूला जाता है। स्वतः सूचनाओं के द्वारा शरीर को शिथिल किया जाता है। इससे लाभ है–एक अनुभूति होती है कि शरीर व आत्मा दोनों अलग–अलग हैं। अध्यात्म की भाषा में इसे **"भेद विज्ञान"** कहते हैं।

(2) अन्तर्यात्रा–रीढ़ की हड्डी के निचले भाग **"शक्ति केन्द्र"** से सुषुम्ना के माध्यम से प्राणशक्ति को सिर के उपरी भाग **"ज्ञान केन्द्र"** तक थर्मामीटर में पारे की भांति उपर चढ़ाया जाता है। इससे लाभ यह होता है कि मनुष्य की जो शक्ति विषय भागों में खर्च होती है वह उपर जाकर ज्ञान केन्द्र में ज्ञान के तन्तुओं को विकसित करती है।

(3) श्वास प्रेक्षा–दोनों नथूनों के बीच आने–जाने वाले श्वास को देखा जाता है। श्वास समतल, दीर्घ लिया जाता है। श्वास की प्रति मिनट संख्या 15–16 से घटाकर 7–8 की जाती है। श्वास की संख्या घटने से शरीर मे उत्तेजना शांत होती है तथा शरीर तनाव मुक्त होता है।

(4) शरीर प्रेक्षा–शरीर के एक–एक भीतरी अवयव पर चित्त को केन्द्रित कर उस अवयव को देखा जाता है। इससे यह लाभ है कि शरीर का प्रत्येक अंग सुचारू रूप से कार्य करने लग जाता है।

(5) चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा–मनुष्य के शरीर मे कुल 13 केन्द्र ऐसे हैं जहाँ चेतना केन्द्रित रहती है। चित्त को एक–एक केन्द्र पर ले जाकर उसकी प्रेक्षा की जाती है। इससे लाभ यह है कि प्रत्येक केन्द्र की प्रेक्षा करने से अलग–अलग महान् उपलब्धियां होती है। उदाहरण के लिए ज्ञान केन्द्र की प्रेक्षा से ज्ञान तंतुओं का विकास, ज्योति केन्द्र प्रेक्षा से कषाय उपशमन, दर्शन केन्द्र प्रेक्षा से अतीन्द्र ज्ञान की प्राप्ति होती है।

(6) लेश्याध्यान–विभिन्न चैतन्य केन्द्रों पर अलग–अलग रंग का ध्यान लेश्याध्यान कहलाता है। इससे लाभ होता है कि उदाहरणार्थ विशुद्ध केन्द्र पर पीले रंग के ध्यान से

वासनाओं की विशुद्धि होती है। आनन्द केन्द्र पर हरे रंग का ध्यान करने के भावधारा की निर्मलता, तैजस केन्द्र पर नीले रंग का ध्यान करने से प्राण शक्ति का विकास होता है।

(7) भावना–किसी एक विषय का बार–बार चिन्तन करना भावना कहलाता है। भावना–अन्यत्व, अशरण, भव, एकत्व आदि बारह भावनाएँ हैं। इससे लाभ यह होता है कि व्यक्ति को आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है।

(8) अनुप्रेक्षा–जिस विषय की प्रेक्षा की जाती है बार–बार उसका चिंतन करना अनुप्रेक्षा है। इससे विचार अवचेतन मन तक जाता है तथा वह विचार ह्रदयंगम हो जाता है।

(ख) अष्टांग योग

योग साधना के तकनीक की दृष्टि से पतंजलि के अष्टांग योग को प्रतिपादित करना उचित रहेगा। अष्टांग योग का वर्णन कई उपनिषदों से भी प्राप्त होता है। इस योग में साधना के आठ अंग निम्नानुसार हैं : (1) यम (2) नियम (3) आसन (4) प्राणायाम (5) प्रत्याहार (6) धारणा (7) ध्यान (8) समाधि। योग की पूर्ण साधना के लिए इन आठों अंगों का क्रमशः अभ्यास आवश्यक है। इन अष्टांगों में से प्रथम दो (यम–नियम) प्रधानतः आचार सम्बन्धी अभ्यास है, इसके बाद के दो अंग (आसन, प्राणायाम) शरीर को भौतिक रूप से योगाभ्यास बनाने के उपाय हैं।

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणध्यानसमाधयोऽष्टावगांनि"[12]

पांचवा प्रत्याहार प्रधानतः इन्द्रिय निग्रह का उपक्रम है और इसके बाद की प्रक्रियाएँ (धारणा, ध्यान तथा समाधि) पूर्ण रूप से मानसिक तथा आध्यात्मिक नियमन की साधनाएँ हैं। पतंजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणयाम तथ प्रत्याहार को बहिरंग योग कहा है और इसके विपरीत धारणा, ध्यान एवं समाधि को अंतरंग योग कहा है।

"त्रयमन्तरंग पूर्वेभ्यः। तदपि बहिरंग निर्बीजस्य।"[13]

ये तीनों संयुक्त रूप से संयम कहलाते हैं–**"त्रयमेकत्र संयमः"**[14] प्रत्याहार अंतरंग तथा बहिरंग योग के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। **बिना प्रत्याहार के अंतरंग योग में प्रवृत्ति नहीं होती।**

(ग) महाभारत के बारह योग

संयम और योगाभ्यास के द्वारा जब योगी की चित्तवृत्तियाँ शांत हो जावे और वह अपने में ही संतुष्ट रहने लगे तब योगी को चाहिए कि वह राग–द्वेष से मुक्त होकर मन को

एकाग्र कर ध्यान–योगाभ्यास में सहायता पहुँचाने वाले बारह प्रकार के योगों की शरण में जायें।[15]

(1) देशयोग–एकान्त, निर्जन या गुफा आदि स्थान पर ध्यान लगाने के लिए आसन को देशयोग कहा गया है।

(2) कर्मयोग–आहार–विहार चेष्टा, सोना–जागना आदि नियमानुकूल को कर्मयोग कहा गया है।

(3) अनुराग योग–परमात्मा एवं उसकी प्राप्ति के साधनों में तीव्र अनुराग रखना अनुराग योग कहलाता है।

(4) अर्थयोग–साधना के लिए केवल आवश्यक सामग्री को ही रखना अर्थ योग कहलाता है।

(5) उपाययोग–ध्यानोपयोगी आसनों में बैठना उपापयोग है।

(6) अपाययोग–संसार के विषयों और सगे सम्बंधियों से आसक्ति तथा ममता हटा लेने को अपाययोग कहते हैं।

(7) निश्चय योग–गुरू एवं वेदशास्त्र के वचनों पर विश्वास रखनेका नाम निश्चययोग है।

(8) चक्षुषयोग–चक्षु को नासाग्र के अग्र भाग पर स्थिर करना चक्षुषयोग है।

(9) आहार योग–शुद्ध और सात्विक भोजन का नाम आहार योग है।

(10) मनोयोग–मन को प्रयास कर नितांत स्थिर करना मनोयोग की श्रेणी में आता है।

(11) संहार योग–विषयों की ओर होने वाली इन्द्रियों की स्वभाविक प्रवृत्ति को रोकना संहार योग है।

(12) दर्शन योग–एकाग्रता पूर्वक ध्यान करके आत्मचिंतन करना दर्शन योग कहलाता है।

योग का आधुनिक स्वरूप

मनुष्य की शरीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक सुखावह अवस्था को स्वास्थ्य कहते हैं। आयुर्वेद प्रवर्तक महर्षि सुश्रुत के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति उसे कहते हैं जिसके दोष, अग्नि धातुएँ मलादि सम अवस्था में हों तथा जो आध्यात्मिक, एन्द्रिक तथा मानसिक रूप से प्रसन्न हो। वस्तुतः यह पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा है। कुछ आचार्यों ने मोक्ष को भी स्वास्थ्य

की चरमोत्कर्ष अवस्था माना है। आयुर्वेद में इसी उत्कृष्ट अवस्था की प्राप्ति के लिए नैष्ठिक चिकित्सा की कल्पना की गई है, और योग शास्त्र का मूल उद्देश्य भी यही है। **मनुष्य अन्यान्य बंधनों से मुक्त होकर स्व (आत्मा) में स्थिर हो जाता है तो वह पूर्ण स्वस्थ कहा जाता है।**

आज का युग विज्ञान का युग है। जीवन को सुखी बनाने के लिए विज्ञान ने भौतिक सुख सुविधाएँ प्रदान की। भौतिक सुख सुविधाओं के उपभोग से मानव जाति ने श्रम करने का अभ्यास छोड़ दिया। श्रम के अभाव में मनुष्य के शरीर को मोटापा, डायबिटीज, ब्लडप्रेशर, हृदय रोग आदि बिमारियों ने घेर लिया। पाश्चात्य जगत में भौतिक संसाधनों के अत्यधिक उपयोग से व्यक्ति में अशांति, असंतोष, अवसाद आदि बुराइयाँ आने लगी। सबसे अधिक अमेरिका जैसे विकसित देशों में यह पाया गया। पाश्चात्य जगत का ध्यान भारतीय संस्कृति–योग की तरफ गया। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने जब इसका अध्ययन एवं अनुसंधान प्रारंभ किया तो भारतीय योग उन्हें लाभदायक एवं उपयोगी महसूस हुआ तथा उन्होंने उसे अपना लिया। महेश योगी जैसे भारतीय योगाचार्यों ने वहाँ जाकर उन लोगों को योग के प्रयोग करवाए एवं प्रशिक्षण दिया। प्रसिद्ध जैनाचार्य आचार्य महाप्रज्ञजी के शिष्य/शिष्याएँ विश्व के कौने–कौने में जाकर पाश्चात्य जगत् के लोगों को ''प्रेक्षाध्यान योग'' के प्रयोग एवं प्रशिक्षण दे रहे हैं। **तभी से आधुनिक युग में योग का बोलबाला बढ़ गया।** भारत में भी लोगों की पाश्चात्य जैसी जीवन शैली होने के कारण अवसाद, असंतोष, अशांति, अनिद्रा, रक्तचाप, हृदय रोग पनपने लगे। इसी कारण आधुनिक युग में भारत सहित पूरे विश्व में भारत देश की संस्कृति व विरासत योग का प्रचार–प्रसार व उपयोग बढ़ने लगा। आज सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए योग केवल एक ही चिकित्सा के रूप में पहचाना जा रहा है। आज यह महसूस किया जा रहा है कि व्यक्ति केवल योग के माध्यम से ही आरोग्य (शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक–सम्पूर्ण स्वास्थ्य) प्राप्त कर सकता है। पारम्परिक रूप से योग एक सिद्धांत व पद्धति के रूप में माना जाता था आज वही जीवन की मूलभूत आवश्यकता के रूप में जाना जाता है। आज योग की पारम्परिक अवधारणा बदल कर अति आवश्यकता के रूप में परिणित हो गई। लोग अपने स्वास्थ्य के बोर में बहुत चिंतित हैं तथा प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए केवल एक ही माध्यम योग की शाखा मे आ रहे हैं। यह योग का परम्परा से परिवर्तित होकर आधुनीकरण है।

साधना करने वाले को चाहिए कि सबसे पहले वह अपने शरीर यंत्र को समझे। **जो शरीर को नहीं समझता, उसका साधना पक्ष प्रशस्त नहीं होता।** शरीर बहुत बड़ा यंत्र है। विश्व की सबसे बड़ी फेक्ट्री भी मानव शरीर के समक्ष छोटी पड़ती है। शरीर की संरचना जटिल है किन्तु मस्तिष्क की संरचना उससे भी जटिल है। इसके अरबों–अरबों प्रकोष्ठ है। इनकी स्वचालित व्यवस्था है। आज के शरीर विज्ञान ने हमारे शरीर में अनेक ग्रन्थियों का

प्रतिपादन किया है। आज से हजारों वर्ष पहले योग के आचार्यों ने जिन चक्रों का प्रतिपादन किया था उन्हीं स्थानों का वर्तमान शरीर–विज्ञान प्रतिपादन करता है। दोनों में बहुत साम्य है। **आज का विज्ञान जिसे "सिक्रिशन आफ ग्लैण्ड्स" कहता है उसे ही योग के आचार्य चक्रों का विकास कहते हैं।**

आज का मानव अर्थ प्रधान होता जा रहा है। मनुष्य ने अर्थ को साधन की भूमिका से हटाकर साध्य की भूमिका में स्थापित कर दिया। अर्थ प्रधानता से मनुष्य के जीवन मे लोभ, लालच, तृष्णा, अशांति बहुत ज्यादा बढ़ गई है। मनुष्य की वर्तमान जीवन शैली अप्राकृतिक एवं असंतुलित हो गई है। योग के आधुनिक शिक्षण–प्रशिक्षण से व्यक्ति की जीवन शैली को प्राकृतिक एवं संतुलित बनाया जा रहा है। योगाभ्यास से न केवल मानसिक शक्ति को विकसित किया जाता है बल्कि कब्ज, कफ, सिरदर्द, शरीर दर्द आदि को दूर किया जा सकता है। योग के माध्यम से मधुमेह, उच्च रक्तचाप, गठिया, संधिवात, दमा आदि बिमारियों का भी इलाज किया जा सकता है। योग से व्यक्ति को नशामुक्त किया जा सकता है। कहा गया है–**"योग भगावे रोग"**। योग के प्रशिक्षण से मानसिक शांति बढ़ती है, दुःखों को सहने की शक्ति बढ़ती है। आसन, ध्यान, प्राणायाम से नकारात्मक भाव–असंतोष, कुण्ठा, अशांति, चिंता आदि से छुटकारा पाया जा सकता है। आधुनिक परिपेक्ष्य में पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने में योग की भूमिका इस प्रकार है–

(1) शरीरिक स्वास्थ्य के लिए–खुली हवा में घूमें, आसन, प्राणायाम करें।

(2) मानसिक स्वास्थ्य के लिए–ध्यान, कायोत्सर्ग करें।

(3) भावनात्मक स्वस्थ्य के लिए–समयक् चिंतन करें, वर्तमान मे जीयें।

(4) आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए–आत्मनिरीक्षण करे, आत्मस्थ रहें।

निष्कर्ष

योग वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी आत्मा का विकास कर अपने जीवन में दिव्यता अथवा पूर्णता को प्राप्त कर लेता हैं। योग अमृत है जिसके द्वारा मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर पाता है। योग ब्रह्मविद्या है। योग मानसिक, शारीरिक भावनात्मक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्ति का क्रम है। चित्त की वृत्तियों का निरोध करना योग है। वेदान्त परम्परा में योग को स्वानुभूति का प्रमुख साधन माना है। प्रसिद्ध जैनाचार्य तुलसी के अनुसार–एकाग्रचित होकर योग (मन, वचन काया की प्रवृत्ति) निरोध करने को ध्यान कहते हैं। योग जीवन के रूपांतरण की एक विशिष्ट कला एवं विज्ञान है।

जैन धर्म की साधना पद्धति का नाम मुक्ति मार्ग है। विश्व विख्यात जैनाचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार "सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र, रत्नत्रयी को जैन योग कहा

जाता है।'' प्रेक्षा का अर्थ–गहराई में उतरकर देखना। देखना आत्मा का मूल तत्व है, इसलिए इस ध्यान पद्धति का नाम ''प्रेक्षाध्यान'' है। प्रेक्षाध्यान एक आधुनिक अध्यात्मिक, वैज्ञानिक सुव्यवस्थित योग पद्धति है। जिसमें योग साधना के आठ चरण हैं–कायोत्सर्ग, अन्तर्यात्रा, श्वासप्रेक्षा, शरीरप्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, लेश्याध्यान, भावना तथा अनुप्रेक्षा। अष्टांग योग उपनिषद् काल के समय की अतिप्राचीन विशिष्ट योग पद्धति है। जिसमें साधना के आठ अंग है–यम, नियम, आसन, प्राणयाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। महाभारत के अनुसार योगी को चाहिए कि वह राग–द्वेष से मुक्त होकर मन को एकाग्र कर ध्यान–योगाभ्यास में सहायता पहुँचाने वाले बारह प्रकार के योगों की शरण में जायें।

मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक सुखावाह अवस्था को पूर्ण स्वास्थ्य कहते हैं। पाश्चात्य जगत में भौतिक संसाधनों के अत्यधिक उपयोग से व्यक्ति में अशांति, असंतोष, अवसाद आदि बुराइयाँ आने लगी। पाश्चात्य वैज्ञानिको ने जब इसका अध्ययन एवं अनुसंधान प्रारंभ किया तो भारतीय योग उन्हें लाभदायक एवं उपयोगी महसूस हुआ तथा उन्होंने इसे अपना लिया। तभी से आधुनिक युग में योग का बोलबाला बढ़ गया। यह माना जाने लगा ''योग भगाए रोग''। भारत में भी लोगों की पाश्चात्य जैसी जीवन शैली होने के कारण अनिद्रा, रक्तचाप, हृदय रोग, डाइबिटिज रोग पनपने लगे। आज पूरे विश्व मे यह महसूस किया जा रहा है कि व्यक्ति केवल योग के माध्यम से ही आरोग्य (शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक–सम्पूर्ण स्वास्थ्य) प्राप्त कर सकता है। जो शरीर को नहीं समझता उसका साधना पक्ष प्रशस्त नहीं होता। आज का विज्ञान जिसे ''सिक्रिशन आफ ग्लैंड्स'' कहता है उसे ही योग के आचार्य चक्रों का विकास कहते हैं। आधुनिक युग में स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए योग की भूमिका निम्नानुसार है–

(1) शारीरिक स्वास्थ्य के लिए–खुली हवा में घूमें, आसन प्राणायाम करें।

(2) मानसिक स्वास्थ्य के लिए–ध्यान, कायोत्सर्ग करें।

(3) भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए–सम्यक् चिंतन करें, वर्तमान में जीएँ।

(4) आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए–आत्मनिरीक्षण करें, आत्मस्थ रहें।

सन्दर्भ–सूची :

[1] गीता–शांकर 6/8
[2] वही, 9/1
[3] गीता 9/1
[4] याज्ञवल्क्य स्मृति 1/8
[5] पातंजल योग सूत्र, 1–2
[6] धातुपाठ 1469
[7] योग तथा मानसिक स्वास्थ्य–पी.डी. मिश्र
[8] महाभारत 12
[9] गीता–शांकर 9/22
[10] मनोनुशासनम्–आचार्य तुलसी–मेघराज संचियालाल नाहटा, मूंगेर (बिहार), वर्ष 1963
[11] जैन योग–आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, तृतीय संस्करण 1988
[12] योग सूत्र 2/29
[13] योग सूत्र 3/7–8
[14] योग सूत्र 3/4
[15] महाभारत, अनुशासन पर्व 226/54